विपश्यना :स्त्री संघर्ष, सशक्तीकरण और त्रासदी की कथा...

स्त्रीवाद स्त्री को मानवीय अस्मिता और गरिमा के रूप में स्वीकार करने वाला चिंतन है। भारतीय स्त्रीवाद पश्चिमी स्त्रीवाद से इस मायने में अलग है कि वह स्त्री को आधी आबादी की स्वायत्त इकाई या स्त्री को पुरुष के विलोम के रूप में देखने की जगह स्त्री पुरुष को समान मनुष्य की तरह मानने की वकालत करता है। उत्तर समय में रेडिकल भारतीय स्त्रीवाद का स्वर और भी ज्यादा लोकतांत्रिक हुआ है। समकालीन भारतीय स्त्रीवाद का स्वर भारतीय परंपरा, आधुनिकता और नवजागरण में अंतर्विरोध ग्रस्त स्त्री चेतना से आगे बढ़ा है। वह अधिक प्रतिरोधी और लोकतांत्रिक हुआ है। अब समय और समाज बदल चुका है। स्त्री घर ,परिवार, समाज के बने बनाए संकीर्ण ढांचे को तोड़ते हुए श्रम, संघर्ष, शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन से अपनी इयत्ता का संसार रच रही है। सामाजिक बंधनों और संकीर्णता के समानांतर एक स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज बनाने की कवायद कर रही है। यहां स्त्री को मनुष्य की तरह देखे जाने की बात है। स्त्री विमर्श का यह समकालीन भारतीय चेहरा आंदोलन, सृजन और संघर्ष का लंबा रास्ता तय कर यहां पहुंचा है जिसमें विमर्श का तेज है तो स्त्री के सशक्तिकरण ,संघर्ष और श्रम की ताकत भी है। भारतीय संदर्भ में स्त्री का विमर्श से ज्यादा सशक्तिकरण हुआ है।

स्त्री सशक्तिकरण का यह ताना-बाना परिवार से बाहर नहीं परिवार के साथ उसको लोकतांत्रिक स्वरूप प्रदान करने से बनता है। संबंधों में मां,पिता,पति, बच्चों, मित्र और परिवेश से भरे पूरे समाज से निर्मित होता है।

स्त्री संघर्ष और सशक्तीकरण को उत्तर समय में नई सृजनात्मक रोशनी और स्त्री अस्मिता के नए प्रश्नों के साथ उसको नई अर्थवत्ता प्रदान करने वाले उपन्यासों में इंदिरा दांगी का ज्ञानपीठ से प्रकाशित उपन्यास 'विपश्यना' ख़ास है। अपने नए कथा विन्यास और सघन चारित्रिक बुनावट के लिए और हमारे समय और समाज के विद्रूप यथार्थ को व्यक्त करने वाला यह उपन्यास सहज ही हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। 'विपश्यना' बौद्ध दर्शन का तत्व जिसमें अपने भीतर के प्रकाश से विश्व को देखने या कहें विशेष प्रकार से देखने को महसूस करना है। जीवन के सत्य का सरोकार करना उसे वास्तविक रूप में देखना । उत्तर समय में रिश्तो को, परिवार को, समाज को, अपनों को नए सिरे से खोजने और पुनर्जीवित करने की यह शानदार रचनात्मक कथा है।

उपन्यास का फलक इस मायने में बड़ा है कि इसमें सिर्फ स्त्री जीवन का ही संघर्ष नहीं है स्त्री जीवन से

होते हुए यह व्यापक मानवीय जीवन की त्रासदी और संकीर्णता को परत दर परत उभारने वाला उपन्यास है। उपन्यास के केंद्र में मां की तलाश है और वही से उपन्यास की कथा के सारे सिरे जुड़े हुए हैं। कुल नौ भागों में कथा का विन्यास विभक्त है- जिसमें परिंदा बीहड़ों में, लव स्टोरी मत सुनाओ, पर्दा जर्दा गर्दा और नामर्दा ,योग्य जन जीता है, मौसम बदलने के दिन, विधवा कॉलोनी, गिद्धभोज, पाईका फूड फैक्ट्री और विपश्यना जैसे शीर्षक इस उपन्यास को और भी सर्जनात्मक बनाते हैं। उपन्यास को कई दृष्टि से देखा परखा जा सकता है इसमें स्त्री सशक्तिकरण बनाम स्त्री विमर्श, प्रेम का त्रिकोण, पत्रकारिता की ताकत और खोखलापन, मानवीय सभ्यता का कलंक भोपाल गैस त्रासदी, विपश्यना अर्थात आत्मालोचन की प्रक्रिया के आलोक में इस उपन्यास का विवेचन किया जा सकता है...।

'विपश्यना' उपन्यास के केंद्र में कुछ महत्वपूर्ण स्त्री पात्र हैं जिसमें रिया और चेतना एक दूसरे के साथी होते हुए भी विलोम की तरह नजर आते हैं इन्हीं के साथ स्मिता, आरती और अन्य हैं। पुरुष पात्रों में रंजीत, ज्ञान,बाबू और आमिर
है। उपन्यास में चेतना स्त्री विमर्श का प्रतिरूप है तो रिया में हमें स्त्री सशक्तिकरण का चेहरा दिखाई देता है। यह कहना कि स्त्री विमर्श के मुकाबिल स्त्री सशक्तिकरण ज्यादा बेहतर या ठोस है बनिस्बत यह कहना कि स्त्री विमर्श बनाम स्त्री सशक्तिकरण दोनों के बीच इस उपन्यास का कथा विन्यास विकसित होता है। उपन्यास की शुरुआत दिल्ली से भोपाल आई तलाकशुदा स्त्री रिया अपनी छोटी बच्ची गुड़िया के साथ अपने दोस्त चेतना के यहां आती है। चेतना जो प्राइवेट कॉलेज में पढ़ाती है। पीएचडी कर रही है। पति से स्वत: अलग होकर भोपाल में रहती है और उसे अपने इस चुनाव पर गर्व है। अपनी स्वच्छंदता को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है ,"देखो मैं कमाती हूं ,फिल्म का आखिरी शो देखकर देर रात अपनी कार से घर लौटती हूं, पर्यटन स्थलों पर अकेली घूमती हूं, डिस्कोथक जाती हूं, हर तरह के कपड़े पहनती हूं, अपने आप पर अपनी पूरी कमाई खर्च करती हूं ।जिस तरह पसंद है उस तरह जीती हूं। शादी मेरी नजर में गुलामी है... आज मैंने अपनी एक गृहणी सहेली को अपने घर पनाह दी है। देखो मैं कितनी ताकतवर हूं। "... लेखिका के शब्दों मे चेतना का यह कथन उसके सपने में आता है।

हकीकत में वह तो नितांत अकेली और आधी अधूरी है। लेखिका चेतना के खोखले स्त्री मुक्ति की ओर संकेत करती है। वह स्वतंत्र है पर संतुष्ट नहीं। नींद के लिए गोली खाती है। गम बुझाने के लिए शराब पीती है। स्वायत्त होने पर भी डिप्रेशन का शिकार है जबकि उसकी सहेली रिया जिसके पास कोई खास आर्थिक आधार नहीं है वह इस शहर में चेतना के भरोसे आई है। अपने संघर्ष से और श्रम से उसने अपनी सफलता की नई इबारत लिखी ।इस शहर भोपाल से उसका पुराना रिश्ता है। भले उसका डिवोर्स हुआ है पर वह टूटी नहीं है। उसके जीवन में उद्देश्य है, प्रतिबद्धता है जो आप को कभी अकेला नहीं रहने देती। कुछ ही दिन में रिया वहां के परिवेश और लोगों में घुलमिल जाती है जबकि चेतना दो ढाई सालों में सिर्फ गार्ड के सिवा किसी को नहीं जानती। रिया का इस शहर के साथ अपनापा जीवन के साथ जुड़ने से पैदा होता है। वह चेतना से कहती है... ,"तुम्हारी बात और है यार तुम तो अच्छी खासी सेटल हो चुकी हो यहां और फिर तो तुम आई ही थी एक बढ़िया नौकरी पा लेने के लिए। मेरा मामला कुछ है और है। सबसे पहले तो मुझे भोपाल की धूल और हवा को पहचानना है।"... और फिर शुरू होता है रिया का

सफर मां को ढूंढने का सफर, अपने को ढूंढने का सफर, अपने को मजबूत करने का सफर, जिसमें उसे भरोसा है अपने आप पर ,मां की स्मृति पर और अपनी नन्ही बच्ची के प्रति प्रेम पर और आगे उपन्यास में बखूबी वह इस यात्रा को पूरी करती है। बुद्धि और हृदय की संगत से। श्रम और संघर्ष से। वह एक नया संसार बनाती है। अपनों को और अपने को सशक्त बनाती है।यही है विपश्यना और यही है स्त्री सशक्तिकरण।...

उपन्यास के केंद्र में मां का किरदार बहुत सशक्त रूप से उपस्थित है। रिया जो अपनी खोई हुई मां को ढूंढने के लिए भोपाल आती है और तमाम संकटों का सामना करते हुए भी वह अपने मां की तलाश पूरी करती है। दूसरी ओर चेतना है जो आत्मनिर्भर है पर तनाव और दुखों के बीच उसे अपनी मां याद आती है मां की दुर्गा रूपी प्रतिमा उसे सहारा देती है, उसका शराब पीना छुड़ाती है। अकेले में उसकी मां ही उसकी श्रोता होती है। और मां की उपस्थिति का एक आलम यह कि उपन्यास में स्मिता भी रिया को चेतना की मां ही मानती है और यह सही भी है क्योंकि चेतना ने भले रिया को ठिकाना दिया लेकिन उसे सम्भाला और संवारा रिया ने। बिल्कुल मां की मानिंद।

स्त्री सशक्तिकरण श्रम ,संघर्ष और प्रेम से पैदा होता है। स्वाभिमान से पैदा होता है। उपन्यास में रिया अपने श्रम से स्वावलंबी बनती है। वह दूसरों के घर काम करती है फिर टिफिन देने का काम करती है। धीरे-धीरे अपना एक खुद का व्यवसाय खड़ा करती है। 'गुड़िया फूड फैक्ट्री' नाम से वह एक सफल उद्यम को मूर्त रूप करती है। पत्रकारिता जैसे पेशे में बेहद प्रतिबद्ध पत्रकार की तरह बेबाक और संवेदनशील तरीके से वह 'विधवा कालोनी' और 'गिद्धभोज' जैसा कालम लिखती है। स्त्री विरोधी पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित उस पत्रकारीय दुनिया को ठोकर मार कर वह पुनः अपना नया व्यवसाय 'पाइका फूड फैक्ट्री' शुरू करती है। यहां लेखिका ने यह भी संकेत किया है कि स्त्री स्वायत्तता का मतलब मल्टीनेशनल कंपनी या बड़े-बड़े नौकरियों की तलाश की जगह स्वयं के व्यवसाय से भी आत्मनिर्भर हुआ जा सकता है जैसे कि उपन्यास की पात्र रिया होती है। श्रम की यह नई स्वायत्त इबारत स्त्री सशक्तिकरण का एक नया रूप भी है।

... उपन्यास में प्रेम के कई कोण दिखाई देते हैं।स्त्री पुरुष संबंध का ताना-बाना उपन्यास की सघन कथा बुनावट में रचा गया है। रिया का पति रंजीत रिया की प्रतिबद्धता के बावजूद किसी और से प्रेम करता है और उसे तलाक दे देता है दूसरी ओर चेतना जिसका पति ज्ञान उससे बेइंतेहा प्रेम करता है वह उसे छोड़कर दिल्ली से भोपाल आ जाती है और बाबू नाम के व्यक्ति से प्रेम करती है जो शादीशुदा है। एक प्रेम रिया और आमिर का भी है। यो आमिर भी शादीशुदा है। उपन्यास में सच्चे प्रेम की तलाश के कई कोण दिखाई देते हैं। इसी प्रेम की तलाश को इतिहास की कहानी से भी उपन्यास में लेखिका ने उसे जोड़ा है। "जब रिश्ते गलत होते हैं प्यार गलत होता है इंसान कोई गलत काम करता है तो उसकी आत्मा हमेशा शर्मिंदा रहती है।" इतिहास की एक गाथा का जिक्र बहुत दिलचस्प तरीके से इस उपन्यास में आया है जिसमें इस्लामनगर का सरदार दोस्त मोहम्मद का रानी कमलापति पर फिदा होना और संदिग्ध स्थितियों में रानी कमलापति का अंत होना और अंततः दोस्त मोहम्मद के हाथ में जायसी के अलाउद्दीन खिलजी की तरह एक मुट्ठी राख आती है। प्रेम के असली मायने विश्वास और प्रतिबद्धता की नीव पर टिके होते हैं जहां यह नहीं है वहां प्रेम खोखला है। उपन्यास में तमाम संबंधों के बीच लेखिका प्रेम के इस रूप को दर्ज करती है जो दोतरफा हो जरूरी नहीं ...।

उपन्यास का महत्वपूर्ण हिस्सा पत्रकारिता की संस्कृति पर है। भोपाल में अपनी मां की तलाश करते हुए रिया को पत्रकारिता सबसे सुंदर सबसे सही माध्यम लगता है। पत्रकारिता उसके लिए मुफीद रास्ता है तभी तो वह कहती है , "मां को ढूंढना है जीविका नहीं जीवन की तरह करनी है पत्रकारिता।"... वह पत्रकारिता में भोपाल गैस त्रासदी के यथार्थ को परत दर परत उभारती है। उस अमानवीय त्रासद यथार्थ को वह 'गिद्ध भोज' जैसे कालम से जनता के सामने लाती है। जिससे उसे बहुत यश मिलता है लेकिन पुरुषवादी वर्चस्व यहां भी अपना काम करता है।उसका कालम बंद हो जाता है। उसे अखबार की नौकरी से मुक्त होना पड़ता है। अलग हो जाती है वह इस संकीर्ण दुनिया से।

उपन्यास का सबसे अहम हिस्सा भोपाल गैस त्रासदी से जुड़ा है। इस उपन्यास को भोपाल गैस त्रासदी के यथार्थ के जीवंत दस्तावेज की तरह भी पढ़ा जा सकता है। उपन्यास की पात्र कलावती उस त्रासदी को इस रूप में बयां करती है... 'जो मर गए वह फायदे में रहे जो बच गए उनका जीवन नर्क..।". आजादी के बाद भारतीय राजनीति, शासन की भ्रष्ट नीतियों के शिकार लाखों की आबादी हुई। यह दुर्घटना नहीं मनुष्य द्वारा की गयी अमानवीय त्रासदी है। भोपाल गैस त्रासदी के यथार्थ को उजागर करते हुए रिया ने 'गिद्धभोज' जैसा कालम लिखा जिसमें तफ्सील से उस त्रासदी के यथार्थ को बयां किया गया। उस गैस त्रासदी ने लाखों जिंदगियों को कैसे नर्क बना दिया। हजारों लोग मरे लेकिन लाखों जिंदगी जो बची रह गई वह नरक की तरह अपना जीवन ढोती रहीं। उसमें भी औरतों की जिंदगी सबसे ज्यादा भयावह हुई। रिया का दुख है कि उस त्रासदी को अंजाम देने वाले खलनायक के साथ हमारी सरकार ने नायकों सा व्यवहार किया। रिया इसी को बयां करती है ,"तत्कालीन एसपी और कलेक्टर न सिर्फ मुख्य आरोपी को ससम्मान छोड़ने गए एरोप्लेन के द्वार तक उन्होंने दिल्ली जाने वाले विमान में विदा होते मुख्य आरोपी एंडरसन को सैल्यूट भी किया।"... उपन्यास में लेखिका ने भोपाल गैस त्रासदी के बारे में इतना कुछ दर्ज किया है वह उस विराट मानवीय त्रासदी को उस भयावह यथार्थ को महसूस करते हुए हमें अपने मानवीय गरिमा और मानुष संस्कृति पर आत्मालोचन करने की नई चेतना देता है...।

उपन्यास का सबसे अंतिम पहलू विपश्यना है। जो इस उपन्यास की पात्र चेतना के तई लेखिका विपश्यना को कुछ यूं दर्ज करती है, "बुद्ध ने विपश्यना साधना से बुद्धत्व पाया। विपश्यना जीवन की सच्चाई को उसके वास्तविक रूप में स्वीकारना है। अपने अंदर की रोशनी में विश्व को देखना है विपश्यना।इसके बारे में पढ़ने के बाद मैंने कुछ नहीं पढ़ा कई दिनों तक। इस योग साधना को करने लगी। फिर अचानक एक सुबह योग के बाद मुझे लगा जितनी सारी किताबें मैंने अब तक पढ़ी सब धर्मों की वे सब अंततः एक ही सत्य की ओर ले जाती है हमें.।".. विपश्यना अर्थात जीवन की सच्चाई को उसके वास्तविक रूप में स्वीकार करने की कवायद। इस उपन्यास का सार इसी में छुपा है कि हम अपनी सच्चाईयों के साथ मुंह मोड़ते हैं ।भागते हैं। जबकि बिना संघर्ष के हम उसका मुकाबला नहीं कर सकते और इस प्रक्रिया में सबसे बड़ी ताकत है आत्मालोचन की प्रक्रिया। जीवन से बड़ा कोई विचार नहीं होता। सारे विचार जीवन से ही निकलते हैं ।जीवन के तमाम समस्याओं से जूझते हुए उपन्यास की मुख्य पात्र रिया संघर्ष की ,श्रम की, प्रेम की और सशक्तीकरण की नई इबारत रचती है जिसमें वह अंततः अपनी खोई हुई मां की भी तलाश कर लेती है।

कहना न होगा कि यह उपन्यास स्त्री सशक्तिकरण के दृष्टिकोण से एक खास तरह से देखा और परखा

जा सकता है जिसमें स्त्री संघर्ष के कई सारे आयाम दर्ज किए गए । उपन्यास में कहीं-कहीं स्त्री सशक्तिकरण के समानांतर स्त्री विमर्श को बेहद आलोचनात्मक तरीके से वक्तव्य की तरह प्रस्तुत किया गया है जो उपन्यास की कथा सरंचना को कमजोर करता है लेकिन कथ्य की विराटता उस कमजोरी को प्रगट नहीं होने देती। उपन्यास अपने कलेवर में स्त्री संघर्ष, प्रेम ,सशक्तीकरण और त्रासदी को बेहद संवादी और जीवंत भाषा में प्रस्तुत करता है।

पुस्तक समीक्षा
विपश्यना (उपन्यास)
लेखिका : इंदिरा दांगी
ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली

समीक्षक : प्रभाकर सिंह
प्रोफ़ेसर हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी